साहित्य सिनेमा सेतु
रील से रियल लाइफ तक
ISSN: 2584-0819

आलेख : लोक गीतों में नारी विमर्श

डॉ. नयना डेलीवाला
अवकाश प्राप्त – एसोसीएट प्रोफेसर, एफ.डी.आर्ट्स एवं कॉमर्स कालेज,जमालपुर, अहमदावाद, 2010 से भाषासाहित्य भवन, गुजरात युनिवर्सिटी में अध्यापकीय कार्य 2016 तक।

https://sahityacinemasetu.com/women-discussion-in-folk-songs/

किसी भी भाषा की सशक्तता एवं समर्थता तभी निश्चित होती है, जब उसमें सूक्ष्म विचारों एवं भावनाओं को अभिव्यक्त करने की क्षमता हो। दूसरे शब्दो में कहें तो —
माधुर्य, सरसता और प्रांजलता भाषा के श्रेष्ठ गुण हैं। लोक-साहित्य इन सभी गुणों से पूर्ण होता है। इसीलिए इसे "**देसिल बयना सब जन मिट्ठा कहा गया है।** "भारत जैसे महान देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रवाहित, जन हृदय का प्रकृत और मधुर रूप, लोक संस्कृति का संस्कार करता है। लोक गीतो में जनमानस का उर्मिल रूप अधिक निखरता है। गीतों के सौम्य एवं आर्द्र स्वरों में इस लोक की सृष्टि होती है।

डॉ.वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दो में "लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है,उसमें भूत,भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरुप है,लोक कृत संज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिये लोक सर्वोच्च प्रजापति है।

आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में 'लोक' का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जनसमाज जिसमें पूर्व-संचित परंपराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें भाषागत सामग्री ही नहीं अपितु अनेक विषयों के 'अनगढ़ किंतु ठोस रत्न छिपे हुए हैं,' अर्थ में होता है।

लोक गीत क्या है ? लोक गीत आदि मानव का उल्लासमय संगीत है। गुफाओं में पनपते हुए मानव में जब थोडी़ बहुत बुद्धि आई और उसके आधार पर उसमें भावनाओं के अंकुर फूटे तो व्यक्त करने के लिये उसने विकृत प्रलाप प्रारंभ किया। यही आदि संगीत पेरी के शब्दो में 'लोक- गीत' है। (This Spontaneous Music has been called Folk-Songs)

राल्फ विलियम्स ने कहा है —
लोकगीत न पुराना होता है न नया। वह तो जंगल के वृक्ष की भाँति है, जिसकी जड़े जमीन में धंसी हुई है परंतु उसमें निरंतर नई-नई शाखाएँ-फूल-फल-कोंपलें पुष्पित पल्लवित होती है।

हमारे जीवन की विकास गाथा ही लोकगीत है जिसका मूल जातीय संगीत में हैं। लोक-गीतों द्वारा किसी जाति की संस्कृति का संप्रेषण होता है। इसीलिये लोक-गीतों को सांस्कृतिक -वैभव, रीति-रिवाज़, परंपराओं, धार्मिक विश्वासों तथा मानव की अन्य सामाजिक – सांस्कृतिक गतिविधियों का संवाहक कहा गया है। ये काल एवं समय के प्रभावों से मुक्त, प्रत्येक युग में मानव-मन को आंदोलित करते रहे हैं।

इन गीतों को जीवन प्रदान करने का श्रेय लग्न-उत्सवों,हिंदु पर्व-त्योहारों को है। रक्षा-बंधन, कजरी तीज, रतजगा, यम-द्वितीया, दीप-मालिका, जीवित-पुत्र व्रत कथा, छठ आदि उल्लेखनीय हैं। कंजरों और भाटों के दल, जो काफ़िला स्थान-स्थान पर पडा़व डालते-फिरते है,पुरातन लोक साहित्य के चलते-फिरते

ISSN: 2584-0819

पुस्तकालय है। लोक-गीतों को प्रोत्साहन देने में मुसलमानों का करुण- पुर-दर्द नर्सियों का बड़ा योगदान है।

क़दम-क़दम पर स्त्री-जीवन के सुनहले गीत मिलते हैं। एक-से-एक मार्मिक गीत। किसीकी आँखों में प्रसन्नता का वसंत,तो कहीं मुसीबतों की बदली। किसी के मुख पर संध्याकालीन एकांत, कहीं मुख पर मौत का सा अंधकार। किसी के अश्रुकण-प्रकाश में चमक रहे हैं, तो किसी के आंसू अँधेरे में बन्द। लोक-गीतो में नारी–जीवन की करुणासभर वेगवतीधारा एकांत भाव प्रवाहित है। नारी जीवन के मार्मिक दृश्य, सामाजिक स्थिति के गोरख धंधे, ग्राम प्रदेश के चित्र, मज़हब की नाजबरदारियाँ, समाज का खोखलापन, ननद-भौजाई के राग-द्वेष,ससुराल में नववधु की व्यथा और सास-ननद के अत्याचार चित्रपट की तरह हू-ब-हू आँखों के सामने से गुजरते हैं।

इन लोक-गीतों में विरह के गीतों का तो कहना ही क्या ? ग्रामीण स्त्रियों के कंठ से निकलनेवाले लफ्जो में न जाने कितनी वियोगिनीयों के हृदय तड़प रहे हैं। कितने घायल हृदयों के अरमान आँसू की बुँदों में ढुलक रहे हैं। नारी की विरह दशा का जीवित चित्र देखने के लिये लोक-मानस की सैर कीजिये।

बन्ध्या स्त्री समाज के लिये कलंक मानी जाती है। संतानहीन पति-पत्नी को लांछित जीवन व्यतीत करना पड़ता है। ऐसी स्त्री के साथ सास-ससुर का अपमानपूर्ण व्यवहार होता है। थककर उसे आत्महत्या के अलावा कोई विकल्प नहीं सुझता...

गंगा किनारे एकु गोरिया गंगा मनाबै।
गंगा एकु तुम लेउ डूबन हम आइन।
की तुम सासु-ससुर दुख नैहर दूरि बसै।
गोरिया कि तोरे हरि परदेस कउने गुनु डुबिहऊ।
न हम सासु,ससुर दुख नैहर दूरि बसै।
गंगा मोरे हरि परदेश,कोखिया बिनु डुबिहऊँ,
बलक बिनु डुबिहऊँ।

इस प्रकार बाँझ की दर्दनाक वेदना और पीड़ा का भाव वर्णित है।
कहीं पर वधू अपने परिवार की भूरि-भूरि प्रशंसा करती नज़र आती है—

मेरे ससुर बड़े दिलदारिया, सासुरानी खांडे केरी धार।
मोरे जेठ हाथन के काँकना, जेठनिया हियरे बीच हार।
मोरे देवर हमारे दिल आँगिया, देवरानिया सलुए बीच कोर,
धनि धन्नि बहू तेरी जीभ, का बखान्यौ हमारा परिवार।

सासु अपनी बहु के इस व्यवहार की सराहना करती हुई साधुवाद देती है। इसी प्रेमपूर्ण व्यवहार से, संयुक्त परिवार के आनंद और परस्पर स्नेह द्वारा समाज की दृढ़ता का पारिचय मिलता है, जो सुंदर लोक जीवन का एक आदर्श है।

अनमेल विवाह का वर्णन भी इन गीतों में मिलता है। ससुराल में लड़की को जब भूमि पर सोना पड़ता है और वह भी अकेले। तब वह अपने पिता को कोसती है, उलाहना देती है—

आँचलु खोलि दादुलि भुइयाँ पै लोटहिं,
रैन मा रहौ अकेली।

ISSN: 2584-0819

मरिहऊँ मैं नउआ,मरिहऊँ मैं बरिया,
मरिहऊँ बभ्भन जी के पूत।
जिन मेरी बेटी का विदेशी वरू,
ढूँढ़ा रैनहु मा रहे अकेलि।

इनगीतों में दहेज प्रथा का भी उल्लेख हुआ है। विवाह से अधिक महत्वपूर्ण दहेज हो गया और विवाह के निश्चित होने के पूर्व वरपक्ष के सामने कन्यापक्ष वाले घर के सारे बर्तन आदि निकालकर रख देते हैं पर दहेज कभी पूरा नहीं होता—
बाजी बरात मड़ये तरै आयी, नौ लख दायज होय।
भितरा के बासन आँगने धरि दीन्हेन्हि दिया दायज नहि होय। ।

विवाह समाप्त होने पर दुलहिन डोली में विदा होती है उस समय एक विशिष्ट शैली का गीत गाया जाता है जो विदाय गीत या समदाउनि के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय संवेदनशील गीतों को सुनकर कठोर हृदयवालों की आँखों में सावन-भादों की झडी़ लग जाती थी और उनकी वियोग वेदना से हृदय फटने लगता था—
अँखिया से आँसुआ ढुलत होइहैं ना।
गजमोती अँछरा भिजत होइहैं ना।
फूल परिजत वा झरत होइहैं ना।
लड़कईयाँ कै नहिया टूटत होइहैं ना।

लोकगीतो में विरह के गीत भी मिलते हैं, आज भले ही वह अतिशयोक्तिपूर्ण लगे पर जब रचे गये थे तब की स्थिति पर सोचे तो सहज स्वाभाविक जान पड़ते है। एक विरहिणी अपनी सखी से कहती है कि सखी! चारों ओर सघन काली घटा उभर आयी है, बूँदे झहर-झहर कर पलंग पर गिर रही है और मेरी कुसुम रंग की चुनरी भीग रही है। मेरी यह छोटी सी फूस की झोंपड़ी चू रही है। प्रियतम के बिना संसार अधूरा है।

बारहवीं शताब्दी से यह गीत लोक जिह्वा पर गुनता है जिसमें बेटी अपने लखिया बाबुल से शिकायत करती हैं कि भाई को तो महले-दुमहले मिले और उसके हिस्से में आया परदेश—
काहे को ब्याहे विदेस से लखिया बाबुल मेरे,
भैया को दीन्हें बाबुल महला-दुमहला
हमका दिए परदेस
रे लखिया बाबुल मेरे।

स्त्री मनोविज्ञान की यथेष्ठ समज के लिये जाँत-गीतों का अध्ययन भी आवश्यक है। इस पर टिप्पणी करते हुए सुमन राजे ने खूबसूरती से कहा है– यह लोक-साहित्यों का एक एकांत कोना है जहाँ स्त्रियाँ एक पहर रात रहे उठकर चक्की चलाती हुई अपनी व्यथा-कथा कहती है।

एक गीत में, जब बहू का भाई उसे मिलने आता है। वह बड़े चाव से पूछती है–
क्या भोजन बनाये, तो सास कहती है कि कोदो और मसउढ़ा बना दो। कोदो एक प्रकार का निकृष्ठ चावल है और मसउढ़ा एक प्रकार की घास। तब वह दुःखी होकर भाई से कहती है–
कै मन कूटौ भैया कै मन पीसा रे ना।

ISSN: 2584-0819

भैया कै मन सिझवँउ रसोइया रे ना। ।
सास खाँची भरि बसना भजारै ना। ।

चैती के महिने में गाये जानेवाले गीत को चैता कहते हैं। भोजपुरी में उसे घाँटो भी कहते है। अन्य लोक साहित्य की तुलना में चैती गाना कठिन है। इसमें कंठ की मधुरता,आरोह-अवरोह, लयात्मकता आदि आवश्यक है। कहा जाता है–

कजरी,बिरहा सब कोई गावै,
सब कोई गावै फाग।
चैता मनवा केऊ-केऊ गावै,
जेकर राग-सुराग।

चैती की एक लाक्षणिकता है कि वह पुरुषों की गायन-शैली है, किंतु इसमें निवेदन मुख्यतः स्त्री भावनाओं का होता है। साठ प्रतिशत लोकगीतों की सर्जक-संवाहक नारियाँ ही होती है। पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर लोक-गीतों व लोक नृत्यों में साथ देनेवाली महिलाएँ ही होती है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक प्रदेशों में भाषा-बोली क्षेत्रों व अंचलों में स्त्रियाँ ही अधिक संवेद्य और मुखर है।

लोक-गीतों में नारी के विवध रुप, मनोंभाव, शिकायत, नफरत, प्रेम, लज्जा, सहन शीलता, करूणा के चित्र हमने उद्‌घाटित होते देखे। कहीं वह निषेधात्मक रुप में नजर आती है तो कई स्थानों पर विधेयात्मक रुप भी उभरता है। प्रेम की फुहारे करनेवाली नारी समय रहते विरह की पीडा़ भी अपने ही पिय के पास गाती है। उसके प्रेम की पराकाष्ठा इस रुपमें देखने मिलती है कि वह मछली बनकर जल के बीच रहना चाहती है ताकि उसके प्रियतम जब स्नान करने आवे तो उनके चरण चूम ले–

जइतों हो राम
आहो रामा मोरा हरि होइतो मैं जल की मछरिया
जलहि बीचे रहि अइतें असननवा
चरन चूमि लेइतीं हो राम।

पति का वियोग उसे सह्य नहीं है। पति के परदेश जाने पर वह एक अचेतन पदार्थ बनकर उनके संग जाना चाहती है। एक स्त्री लौंग की लता को संबोधित करते हुए कहती है–

जो मैं जनतेउ लवँगरि एतना महकतिउ
लवँगरि रँगतेउ छयलवा के पाग।

पत्नी अपने प्रिय को अँगूठी का नगीना समझती है। मिलन की रात में चाँद को उगने से रोकना चाहती है और रात जल्दी शेष न हो, इसलिये सूरज को देर से उगने का अनुरोध करती है। प्रिय विरह से उनकी आँखे सराबोर है। काजल जल बन जाता है, शरीर लहर – सा बह उठता है–

नयन सरोवर काजर नीर
ढ़रकि खसल सखि धनक सरीर।

पत्नी में प्रेम के अतिरिक्त सेवा का भाव भी प्रबल होता है। साँझ की बेला में पति जब थका हारा खलिहान से आता है तो वह अँजुरी में जल लेकर उसका मुख धुलाती है, होले-होले पंखा डुलाकर उनकी थकान दूर करती है–

ISSN: 2584-0819

साँझ के बंरिया पिया एिलन खरिहनवा से
डोला वहइ गोरिया रसे रसे वेनियाँ।

आज की भाग-दौड़ की जिंदगी में लोक गीतों का महत्व कम होता जा रहा है, क्योंकि नारी के पास आज समय की कमी है, बल्कि समय ही नहीं है कि वह शादी-ब्याह के लोकोत्सव में भाग ले सके। कामकाजी महिला आर्थिक व्यवस्था को बनाने-सुधारने में स्वयं समाज से कटती जा रही है। जब नारी स्वयं ही भाग न ले, न ही लोकगीतों में रुचि रखे तो वह अपनी संतान को गाने के लिये कैसे प्रेरित कर पायेगी। पाश्चात्य सभ्यता की ओर बढ़ते आज के बच्चे लोकोत्सव में संस्कारित गीत न गाकर कोई अंग्रेजी धुन की कैसेट चलाकर उस पर डांस करना पसंद करते हैं। ऐसे में लोक-गीतों का प्रचलन दिनोंदिन कम होता जा रहा है। यही समय है लोकगीतों के संरक्षण करने का। इसके संरक्षण की निहायत आवश्यकता है, इसके लिये भारतीय नारी को ही अग्रसर होना होगा। आनेवाली पीढ़ी को इसका महत्व समझना पड़ेगा। नई पीढ़ी को समझना चाहिये कि लोकगीत लोक के मन की घड़कन है जिसमें जीवन धड़कता एवं पनपता है। लोकगीत नीति-शास्त्र का अखूट खजाना है। इसका संरक्षण करना बहुत मुश्किल काम है, क्योंकि यह लिखित तो होते नहीं। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को पैतृक संपति के रुप में सौंपती चली आती है। इसका माध्यम होता है केवल कंठ ।

अंत में मैं यही कहूँगी की भारतीय संस्कृति में लोकगीतों का महत्व आज से नहीं, शुरु से चला आ रहा है। जैसे जलेबी में रस, बगीचे में फूल, फूल में सुगंध, महीनों में फागुन और नाटक में राग का है, वही लोक जीवन में लोकगीतों का महत्व है। किसी भी राष्ट्र की भौतिक पहचान उसकी भौगोलिक सीमाओं, कल-कारखानों, उद्योग-धंधा, गाँव-नगर और महानगर, गगनचुंबी अट्टालिकाओं से होती है, लेकिन उसकी सांसकृतिक पहचान तो धर्म, संस्कृति, दर्शन, कला की साधना से होती है। इन सबका सृजन लोकगीतों की भूमि पर होता है जिसकी उर्वरता नारी की भूमिका पर निर्भर करती है।